राजा की सवारी

श्रीहर्ष

सामयिक प्रकाशन
कलकत्ता

मूल्य रु० १० ००
श्रीहर्ष
प्रथम संस्करण १९८०
प्रकाशक सामयिक प्रकाशन
क्यू १० ४०/१ टॅगरा रोड
कलकत्ता ७०००१५
मुद्रक एसवेज
८, शोभाराम वैशाख स्ट्रीट
कलकत्ता ७०००७०
आवरण अजीत विक्रम (दत्तो बाबू)
RAJA KE SAWARI (Poetry Collection)
by SHRI HARSHA
Rs 10/
SAMAYIK PRAKASHAN
Q 10 40/1 Tangra Road
Calcutta 700015

क्रम

अपनी बात

- कविता मेरी दृष्टि मे समझदारी के साथ किया हुआ एक जिम्मेदारीपूण सामाजिक काय है जिसका हमारे जीवन जगत मे एक विशिष्ट स्थान ह। हमारे दैनिक जीवन मे घटने वाली राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सास्कृतिक घटनाओ की जटिलताओ को काव्य के समस्त हथियारो के साथ कविता मे व्यक्त करने की चेष्टा कविकम का मुम्य अग है। जब कि आज के जटिल यथाथ को व्यक्त करना इतना सहज नही है जितना की लोग समझते हैं। हमारे समाज की सरचना मे एक तरफ सामती मूल्यो की जडता का प्रभाव है तो दूमरी तरफ औद्योगिक विकास के सतही आधुनिकरण का असर है। सम्पूण सामाजिक जीवन एक विचित्र विरोधाभास की प्रक्रिया से गुजर रहा है। पुराने मूल्य टूट रहे हैं लेकिन नये मूल्यो का निर्माण जसे ठहर गया है। आज सम्पूण भारतीय समाज एक विशेष प्रकार के राजनैतिक सामाजिक, आर्थिक एव सास्कृतिक सकट से गुजर रहा है। यह सकट मनुष्य की चेतना की रीढ को लगातार तोडने की असफल चेष्टा मे लगा है। ऐसे सकट के समय मे जनवादी कविता का नैतिक कत्तव्य है कि इस सम्पूण सकट को मानवीय श्रम से विकसित होते नये समाज के समक्ष रखना व मानवीय श्रम पर होनेवाले घात-प्रतिघातो को रोकने की चेष्टा करना।
- मै यह मानता हू कि रचनाकार के पास एक जीवत दशन दृष्टि का होना जरूरी है। बिना इसके 'वह' हमेशा भ्रम के अधड मे एक तिनके की तरह इधर उधर उडता रहता है। सामाजिक यथाथ को मोतियाबिन्दी आखो से देखता है और यथास्थिति को बनाये रखने के लिए पहरेदार का काम करता है। जीवत दशन हमे सामाजिक यथाथ की जटिलताओ को समझने के लिए एक वैज्ञानिक जीवन दृष्टि देता है। राजनीति मे घटने वाली घटनाओ की तह तक पहुचाता है। हमारी स्वतन्त्र चेतना का विकास कर हमे अपने नागरिक अधिकारो की रक्षा करना सीखाता

हैं। यही नही कविता के परिपेक्ष्य को व्यापकता प्रदान करता है।

- जनवादी कविता जनसंघर्षों से उपलब्ध जनवादी मूल्यों की स्थापना के दौर से गुजर रही है। ऐसे समय में सजग एवं प्रतिबद्ध रचनाकारों का दोहरा दायित्व है। एक तरफ काव्यगत सभी मूल्यों की रक्षा करते हुए जन-जीवन में आज के जटिल सामाजिक यथार्थ को पहुंचाना व उनकी कलात्मक रुचियों का परिष्कार करना, दूसरी तरफ जन-संघर्षों में फैलायी जानेवाली हताशा, निराशा संकीर्णता साम्प्रदायिकता आदि को जड़ से काटना। यह कार्य बोधगम्य सहज भाषा के द्वारा ही सम्भव हो सकता है।
- कविता की विषय वस्तु के बारे में भी व्यापक दृष्टिकोण का होना जरूरी है। शक्तिशाली कथ्य के साथ साथ सधे हुए शिल्प का होना भी रचना के लिए जरूरी है। जन-जीवन में व्याप्त बहुत से ऐसे विश्वास जिनका वैज्ञानिक विकास की दृष्टि से कोई मूल्य नहीं है उनका पुनः मूल्यांकन कर जन-जीवन में उसकी सार्थकता व निरर्थकता को सिद्ध करना आजकी जनवादी कविता का दायित्व है।
- हमारे समय की यह मांग है कि इतिहास के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक यथार्थ की परम्परा का विकास हो व जन-जीवन अपने संघर्षों में इस विकास से लाभान्वित हो।
- जनवादी कविता के लिए समय की नब्ज को पहचानना जरूरी है। अपने युग के एक एक तेवर को बारीकी के साथ और गहराई के साथ परख कर अपने अनुभव समृद्ध करना जरूरी है। जीवन के मुख्य प्रवाह से जुड़कर ही जीवन्त कविता की रचना सम्भव है।
- 'राजा की सवारी' मेरा दूसरा काव्य संग्रह है। मुझे विश्वास है समझदार पाठक, विवेकशील आलोचक अपने स्वस्थ सुझावों से मेरी अगली काव्य-यात्रा को सफल बनाने में सहयोग करेंगे।

जिनकी पीठ
आये दिन
नगाडा बन बजती है
और फिर भी
तनकर खडी होती है
उन सभी
साथियो को

कतार

मेरे फोन से
साहब नाराज हो गये होगे
मुझे भी
सोये साँप को नही छेडना था !
लेकिन मैंने तो
छोटे मे हिसाब की बात कही थी
शायद टाइप बाबू
हिसाब की चिट्ठी टर रहा होगा, टाइप
क्या साहब मुझे
बिल्कुल ही साफ कर देंगे ।
मैं तो बराबर उनकी मुस्कान मिजाज
और गुस्से का प्रशसक रहा हूँ —
उनकी परछाई मे ही सपने बुनता रहा हूँ
उनके गमले या मनीप्लाट बनने
दौड भागकर हाफता रहा हूँ
जरूर किसीने
मेरे खिलाफ—कान भरे होंगे !
अब तो इस शहर मे क्या
देश मे रहना भी मुश्किल होगा !!
सुना है, उनसे
चिडियाखाने के बाघ तक डरते है
लेकिन चूहे और चीटिया ताकते तक नही
क्या मैं
चीटियो की कतार मे शामिल नही हो सकता ?

१/२/७७

भूख के गर्भ से

आज तीसवा दिन है और लोग उसी तरह डटे ह—
दरवाजे पर पेट फुलाये ताने का चेहरा
हो रहा है पीला
मन्त्रीजी को एक ही सुख है कि
उनकी तिजोरी पर खडा लाल त्रिकोण
कामधेनु है
वे समाज सेवी ह।
बहुत दिनो मे गद्दर और खल्वाट की चमक ही
चला रही है शासन
आत्मकथा मे बुरे दिनो का जिक्र है
और अब कज के मकान से
कितना अधिक वसूला जाय किराया
यही एक फिक्र है।
अनिश्चित काल का असर
भक्तो और मन्दिर की आमदनी पर भी होने लगा है
घेराव नाटक के दुखान्त दृश्य से अधिक कुछ नही
लेकिन मुनाफे पर सविधान के साँप का पहरा है
आज तीसवा दिन है और मास्टरो का दल
अपनी पोशाक मे वही डटा है।

मुनिया जानती है—पापा की जेब मे
चाक और चाक्लेट दोनो ही नही है
• चुपके से इतना ही पूछती है
क्या स्कूल का घटा गूगा हो गया है ?
अब तो बेंचो पर दिन रात बैठते होंगे भूत—प्रेत
क्या मेरी साइकिल उन्ही के पास है ?
ब्लैक बोर्ड की सीटी से वे डरते नही।

रसोई घर के खाली डिब्बो पर
नाचने लगे हैं चूहे
छत के कोनो मे चमगादडो की तरह
झूल रहे ह जाले
लेकिन चूल्ह की आच का तेवर
अभी भी चमक रहा है
आज तीसवा दिन है और मास्टरो का मनोबल
मोनमेंट की तरह खडा है ।

मानसून के दबाव ने पुराने छातो की छत मे
कर दिये हैं छेद
और चूने लगा उनका मन
भीगने के डर से कापने लगी देह
लेकिन चप्पल मे उभरी कीलें
बारबार एडियो मे चुभकर
एक ही बात कहती ह
भूख के गभ से जन्मी भाषा
ठीक जगह करती है हमला
आज तीसवा दिन है
और मास्टरो के पावो मे गति है ।

२५/७/७३

एक यात्रा का अन्त

आखिर किन गुणों में रुक रुक कर भी
हमारे पाँव इस यात्रा के लिए चलते रहे हैं?
हमने जब भी ठहर कर जोड़ा है हिसाब
उदासी-ऊब खीज के अलावा
कुछ भी नहीं लगा है हाथ
सारी यात्रा रेसकोर्स का घोड़ा बनकर रह गई।
शायद हमारी शुरुआत
एक हौंच पौंच-तरीके में ही हुई है
और जहाँ जिस जगह कोई रास्ता दिखा
हम चल दिये
कौन आगे और साथ है देखकर भी नहीं देखा
अकस्मात रास्ता एक खाई बन गया
हम उसीमें उतर गये और पाँवों को
स्टैंड पर खड़ी साइकिल की तरह चलाते रहे,
कुछ लोगों ने अपने ही हाथ पाँव काटकर
खाई को भरा
और हम सबलोग, खून से भीगे पंजों को
करीने से सजाते हुए, बाहर आ गये
फिर उसी सवाल ने परेशान किया
कहाँ, किसके साथ और किस रास्ते जाना है?
कुछ लोग खून भीगे पाँवों के साथ बाजार गये
और दुकानदार बनकर लौटे
हाथी, घोड़े और गैंडों का बहुत बड़ा दल भी
इनके साथ था
जिनकी पीठ पर चिड़ियाखाने की
सील मुहर लगी थी।

ऐसा हडकम मचा कि बचे हुए लोग
एक मोड घूमकर दौडे
और दायें बायें फुटपाथो पर चलने लगे
बीच सडक खून भीगे पाँवो के हल्के निशान
छापते-अपन बडे दलके साथ
दुकानदार चलने लगे ।
जिन्होने अपना एक हाथ, दायें फुटपाथ पर रखा ।
रास्तो मे चारो तरफ पाँवो के निशान देख
असली और नकली का भेद समझना भी मुश्किल हो गया ।
कभी इधर और कभी उधर के भटकाव से
एक ही बात लगी कि आदमी फिर पीछे लौट रहा है
एक लडखडाते विश्वास के बीच
अपनी यात्रा के फालतूपन से ऊब रहा है ।
उसके हाथ पाँव सिकुड कर छोटे हो रह ह
पेट की सुरग मे होनेवाले विस्फोटो को
अपनी हथेली से दबा रखा है कनटोप ने ।
वह जिन हथियारो से
रास्ते मे उग आये जहरीले पहाडा को काटना चाहता है
धीरे धीरे उनकी धार मर गई है
नई धार करवाने मे उसे भय लगता है ।
और इसी भयने, इस तरह मारना आरम्भ किया है
कि अब खून भीगे पावो को
आईना बनाकर
• अपना चेहरा देखता है
कभी उसे अपनी नाक छोटी
और कभी बडी दिखाई देती है
उसे एक ही खुशी है, नाक अभी तक वही है ।

अप्रल १९७५

मै कहाँ हूँ ?

मेरे चेहरे की
एक एक परत उतारकर
अपने पसीने की सच्ची कमाई
खाने वालो ने मुझे
मरी हुई मक्खी की तरह निकालकर
फेंक दिया है अपने घर से !
अब उनके पास बैठकर
घबराहट का पसीना भी नही पोछ सकता !
जब भी उनके बारे मे सोचता हूँ
मेरी लालची जीभ लपलपाकर
सिक्के का तलुआ चाटने लगती है।
मेरे सामने ही गर्भवती धरती की
पसली को चूर-चूर कर रहा है
एक ठगबाज चेहरा
और देश को हमेशा अपने पस मे ही
रखना चाहता है
भ्रम की काली पट्टी का भय
चीखने भी नही देता कैदखाने मे
मैं कहा हूँ—?
कहा है मेरी कविता—?
जो फिर मुझे जोड सके
अपनी ही मिट्टी से

बेचैनी

पता नहीं
किस बात ने अब तक रखा है जिन्दा
लोग इन दिनो अधेरा खा रहे ह
और जहर पी रहे ह।
साप की तरह काटती चीजो के खिलाफ
भीतर ही भीतर सुलगता गुस्सा
खोज रहा है रास्ता
विस्फोट के भय से सिकुडकर छोटी होती कुर्सी
खिसियाकर नोच रही है खम्भा
भूख के जगल मे उलझा आतक
मेमनो की तलाश मे पागलवन गुर्रा रहा है।

बदले मौसम मे पालतू कुत्ते भी
कागजी बाघ बन घूम रहे ह
खाली पीपो की चीख को
तुर्रेदार गोल टोपी बता रही है लाल बुखार
काच की नली मे कैद पारा सरक कर
निकलना चाहता है बाहर
हर गाँव-नगर बेचैनी से छटपटा रहा है
सगीनो के सख्त पहरो के बावजूद खुलता जा रहा है
सफेद कपडो के भीतर का राज ?

५/५/७४

समय फिर बदलेगा

फटा कम्बल ओढे भटकती
एक औरत
दिसम्बर की हवा से ठिठुर कर
नुक्कड की बत्ती को ताकती रहती है सारी रात।
मनमे उफनते दुःखके तूफान
चेहरे पर उदासी के बुदबुदे बन
उभर आते हैं
दो मुट्ठी सर्दी को
भूख की आच से सुलगते पेट मे
घुसाते वक्त—एक ही बात बोलती है
यह समय फिर बदलेगा।
दीवारो की पपडिया खुरचकर
कुछ लडके लगाते हैं—नया पोस्टर
पडोस के मकान से—
फिर बच्चे के रोने की आवाज आती है
मैं अपने कोट की जेब मे रखे
बिस्कुट खोजता हूँ।
वह फिर एक ही बात बोलती है
यह समय फिर बदलेगा।

१७/१२/७६

ठीक जगह पर हो हमला

हवा मे ठण्डक होने के बावजूद गर्मी है
क्यो नही चलने के लिए रास्ता तय करलें ?
हर बार ठिठुरते सवालो को
ढक दिया जाता है दुशालो से
फिर भी हड्डियो की किटकिटाहट
फैल जाती है चारो तरफ
कितना महगा और मिजाजी हो गया है—वसन्त
ठूँठ पर बैठे गिद्धो को ही लगाता है तिलक।

खतरनाक मौसम मे
कौन सामने आये पहले !
परदे के पीछे दुबकना भी
सुरक्षित नही है अब
खाली मञ्च पर केवल रिहर्सल देख
लौट गये दर्शक
अब सही नाटक की शुरूआत हो गई है मुश्किल !
ऐसा भी होता है—घोडा गाडी के पीछे
चाबुक लेकर चलती है मोटर
लीद से पेट की खाई कबतक भरेगा कोई ?
सडक साफ करने पर चल रही बहस
इतनी बडी आग पर चलने वाले ही
तोड रहे हैं तिलस्म
क्या चीजों को जानना अदालती अपराध है अब ?
कौन सा गुनाह किया है मैने—यह कहकर
कि सही हथियार से ठीक जगह हो हमला ?

धरती की धड़कन

किसी को खबर तक नहीं है
कि कितने मरे हैं पक्षी
और कितने आदमी
चारों तरफ बैठी है—एक अजीब चुप्पी।
सूरज के मुँह पर भी ताला है
चाबी फेंक दी है—अँधेरे समुद्र में
मैं उसी चाबी को खोज रहा हूँ।
घड़ियालों को देखकर
कैसे करूँ मन को छोटा !
रोने वाली तो मेरी माँ भी नहीं है
जिसने जन्म के साथ ही सिखाया था
धरती की धड़कन को कान लगाकर सुनना
और अपने हौसले को
आकाश जितना बड़ा करना।

१६/१०/६६

सक्राति

बाबी मे रेंगती सनाति
पूरे देश को
दीमक की तरह चाट रही है।
वे रास्ते जिनकी तहो से
फूटता था ताप
अब लौट रहे हैं
ठडे मकानो के खुशबू भरे कमरो मे।
हवा आस-पास को झकझोर कर
खटखटाती है दरवाजे
जब भी साकल खोलने की चेष्टा करता हूँ
मेरे हाथ काटने को लपकता है
एक आदमी—
जब भी बिना हाथो के बाहर निकलकर
धूप को छूना चाहा
मेरी आँखो पर फेंक दिया गया
धम जात-पात का एसिड
और अब मेरे दिमाग की नसो पर
हथोडे मार
उस सिरा को तोडा जा रहा है
जिससे विचारो के कारखाने मे
पहुचती है रोशनी।

—जनवरी ६६

मटमैला कुहासा

चारों तरफ चिटकती चिनगारियों को
ढक नहीं पायेगा-मटमैला कुहासा
बाहर निकलकर कुछ करने की ललक
सारी घेराबन्दी के रहते फैल रही है चारों तरफ।
इतनी जल्दी ही पूरे नाटक का अंतिम दृश्य
आ गया मंच पर।
केवल हत्या में शामिल करने ही
मुझे बनाया गया था दर्शक?

वे आदमी के खिलाफ-आदमी को भड़काकर
देखना चाहते हैं तामशा
हर हत्या को जूड़े का फूल बना
बचाना चाहते हैं अपना सिर
शायद अब पोली जमीन भी चुभने लगी है
तलुओं में
युद्ध किस मोर्चे पर लड़ा जाये फिर से
भीतर की छीना झपटी तोड़ रही है मकान।

सत्ता के नशे ने नंगे चाकू से काटकर
सब कुछ कर दिया है टुकड़े-टुकड़े
हाथ से हाथ का रिश्ता बन गया है खूनी
एतबार ठगी नारों का कैसे करे कोई
बेचकर देश को जिन्होंने
पोत दी स्याही।

१/१/७५

खामोशी की घुटन

जिस बेतरतीब तरीके से यह मकान सजा है
इसे ऐसा ही रहने दो
टेबुलो पर चढकर कुर्सिया टेढी आँख से
देखती है दुनिया—तो देखने दो
सीढियो के मुहाने गद और अधेरा
हाथ मिलाकर बैठे ह तो बैठने दो
तारीखें जल्दी-जल्दी सरक कर कैलेडर
छोटा कर रही है तो करने दो
शहर
अजगर बनकर सबको पूँछ मे लपेटता है –
तो लपेटने दो
गाँव
बार-बार बाढ अकाल का शिकार होता है
तो होने दो
फाकने दो लोगो को धूल और चाटने दो
जूठी पतलो पर चिपकी वायदो की बासी खिचडी
नगापन जितना अधिक बढता है उसे और बढने दो
लोग खामोशी की घुटन से शीशे की तरह चिटकते ह
तो चिटकने दो
बोलने दो रातमे कौओ और चमगादडो को
बरसने दो ओलो की तरह आकाशी आकडे
घुसने दो कुम्भ मे सारे देश को
होने दो बाझ इस उपजाऊ धरती को
अगर यह सब अच्छा नही लगता है
तो आओ फिर से शुरू करें नई स्लेट पर अ-आ पढना।
२/२/७०

मछलियों की छटपटाहट

समुद्र के किनारे सलवटों के बीच पसरी
चिलकती रेत में चलते वक्त
कितनी ही बार धँसे होंगे हमारे पाँव
टूट गई थी रेशम की तरह मुलायम
गोरे पाँव की चप्पल
लेकिन कम नहीं हुई थी-रेत पर सूखती
मछलियों की छटपटाहट और उछल कूद।
औंधे मुँह लेटी पुरानी नौकाओं पर बैठा-एक जोड़ा।
शाम के इंतजार में
उफन-उफन कर आती लहरों को
उछाल रहा था पावों से ।।

किनारे पर डटा मोटा मगरमच्छ
दोनों हाथों से
मछलियों को पटक रहा था रेत पर
मछुआरिन की आँखों से चू रहे थे आंसू
होंठों पर सूखी कत्थई पपड़ी लिये लौटा था-मछुआ
जाल में अटकी आखिरी किरण को निकाल कर
जलाना था-लालटेन
मगरमच्छ गम रेत फेंक रहा था चारों तरफ
मछलियाँ उछल-उछल कर जा रही थीं
लहरों के पास

३/२/७७

चाँद एक नया रूप

सूरज के कई रगो को
अपनी सलवटो मे बाध
गोधूलि मे थके पावो लौटते किसान की तरह
चलती नदी—
किनारे पर खडे ताड गाछो की लम्बी परछाइयो मे
हिलती एक डोगी
जिसमे हर रोज
एक चाद सा चेहरा
नदी पर उतरते सन्नाटे से खेलने
पानी को मुट्ठियो मे बाघ उछालता है हँसी !
लेकिन अब उसे कसे कहूँ चाद
जिसमे जगल पहाड भूरी बालू
और ज्वालामुखियो के झुण्ड ही है
केवल ।
कितने हजार वर्षों तक
तमाम गोरे चेहरा को चाद कहकर
ठगता रहा है मेरा युग !
आज हथेलियो मे रखे चेहरो की लाली
चिमनी से उठती आच से लाल होते
आकाश की तरह लगती है मुझे
मेरे दोस्त विज्ञान ने—
अधेरे की एक दीवार और तोड दी है ।

२७/१२/६८

रोशनी बहुत बदनाम है

रोशनी बहुत बदनाम है
आप सम्भलकर रहिये
तेज धार की तरह काटती है अंधेरे को
आप सम्भल कर रहिये
बहुत साफ सुथरी और उजली है
पानी की तरह
ताकने के पहले आखें गुम न हो जाये
आप सम्भल कर रहिये।

भोर का शोर शाम की चुप्पी है
तूफां मे अकेली कश्ती है
जो नाचकर थकाती है—लहरों को।
मन से मासूम और सयानी है
स्याह विरानो मे चांदनी-सी उज्ज्वल
खुशबू भरी कहानी है
लेकिन
हर अड़चन के खिलाफ—बगावत है।
देखिये कैसी है रोशनी
सोचिये कसी है रोशनी
यह हमारी अपनी है रोशनी
आप सम्भल कर रहिये।

२०/५/७६

इस जुर्म के लिए

और इतना जल्दी ही—खुदा हाफिज के लिए
उठ जायेगा—हाथ
अभी तक तो मैं
आंखो की अदालत के
कटघरे से निकल भी नही पाया हूँ
तुम्हारे वकील मन के आरोप
कि मैंने क्यो सागर की गहराई मे उतर
मोती खोजने की बात कही
मैंने किसकी इजाजत से फूल की तरह
महकती हँसी को
छिपा लिया है खाली जेबो मे
मैं क्यो सच की सूली से भरना चाहता हूँ
धरती पर हँसते सपनो मे नया रग
और बार-बार
मेरे हर उत्तर को बना देता है—प्रश्न
तुम्हारा वकील मन ?
मैं फिर अपने विश्वास के बडे दरख्तो वाले जगल मे
उत्तर की खोज मे दौडता हूँ
मैं नही जानता—इस जुर्म के लिए
मुझे कौन सी सजा मिलेगी ?
अदालत को अपना पूरा वक्त लेने दो दोस्त
फिर उठाना खुदा हाफिज के लिए हाथ

२३/५/७९

जीवन की ऊँचाइयाँ

मेरे शब्दो को
सकोच की कोई भी अर्गला
नही रोक रही थी
और नही कोई धूत अधेरा
किसी कोने से झाकने की
कर रहा था चेष्टा
मैं
वह सब कुछ कह देना चाहता था
जो सगीत की सीमाओ को पारकर
मुक्त हँसी की ऊँगलियों से
छूता है जीवन की ऊँचाइया।
बार-बार उठते तूफानो मे—उसे कहने को
गर्म रेत पर पडी मछली की तरह—छटपटाता रहा हू
पता नही—कैसा लगेगा—
तुम्हारे पारदर्शी विश्वास को
रोशनी की आच मे हँसता यह सच ?
इसलिये चेहरे की भगिमायें ही
बोल रही ह-चुप-चाप

२३/५/७९

प्रतिध्वनियाँ

और किसी दिन अचानक
इस दौडती गूँज की प्रतिध्वनियाँ
जब हरे मैदानो की
ओस डूबी नन्ही दूब पर
आईना बनने बिखर जायेंगी
तब लोग पागल होकर
उस गूँज को खोजते हुए
ओस को जूतो की नोक से कुचलकर
चले जायेंगे—दूर बहुत बहुत दूर
फिर भी
प्रतिध्वनिया
ओस की गोद मे ही
आकाश का आईना बनने
छटपटाती रहेगी ।

२७/२/७६

मन की कसक

अब वे बहुत खुश है—कि
काँटो को भी—उन्होने
अपने लिये—बना लिया है
फूल—
बडी फुर्ती से अपने दस्तानो को
धो रहे है—गगा जल मे ।
इन्ही फूलो से गमले
सजाकर
नाचेंगे चाँदनी रातो मे
उस समय भी शायद
उनकी बाहो मे चुभेगी
काँटो के मन की कसक

२७/२/७६

विश्वास के सेतु

अंधेरे के
एक मोड से
दूसरे मोड के बीच का रास्ता
एक सुखद स्वप्न जैसा ही
लगता है
फिर किस कोने से
इन डरावनी आखो का गुस्सा
फैल रहा है—
अभी तो विश्वास के सभी सेतु
उसी तरह खडे हैं
कौन कहता है कि टूटने का
समय आ गया है।

२७/२/७९

नया आकाश

यह ठहरा हुआ सिलसिला
फिर शुरू होगा
इस बार जब
लोहे की साकलें टूटेंगी
धरती के गभ मे अटका सूय
रोशनी के फवारो के साथ
आयेगा—बाहर।
दरबो मे कबूतरो की तरह दुबकी
आशकाये—
अपने पख फैलाकर
फिर नापेगी—नया आकाश।

२७/२/७६

ताजा-धूप

अधखुले दरवाजो मे
फिर ताजा धूप
बिना रोक-टोक घुसने लगी है
उसने—पेडो की ऊँचाई मे
नजर मिलाकर
बात करने का हौसला
हासिल कर लिया है —अपने आप
और सूखी लकडी की तरह
लम्बी चुप्पी तोडकर
बहुत जोर से मचाने लगी है शोर
पहले से अधिक जमीन के भीतर बैठकर
चतुर्दिक सुलगाने लगी है आग
घर की हरी-पीली दीवारें-परेशान होकर
पुकारने लगी हैं—मुडेर पर बैठे कौओ को
कौओ के साथ
चील और गिद्ध लालची नजर से
मडराने लगे है—दरवाजो के आकाश पर।
दीवारो की ओट चहल कदमी कर रहा है
एक चाबुक वाला सफेद शैतान
वह कभी हरिण और कभी सियार की बोली बोलता है
धूप के मुह पर कभी अधड
और कभी अधकार फेंकता है
लेकिन वह
और अधिक धरती के भीतर घुसकर
अपने नये रास्ते बना रही है—चुपचाप।
—मई ७८

सुरक्षा—सडक पर

खून मे धँसती बफ और खाली थाली को
लपलपाती जीभ से
घबराकर वर्दीधारी सुरक्षा
अपने पेट के पीपो को बजाते हुए
आ गई है—सडक पर
कनटोप की तरह सिर पर बठे
बदमिजाज अधेरे की बेहोशी को
प्याज के छिलको की तरह उतार रही है
समय जब हवा के स्वरो मे फूँकता हे
चिनगारियाँ
हजारो वर्षो मे
गुलामी के एडीदार बूटा के नीचे
दबी इच्छाएँ—अपनी मुक्ति के लिए चीख उठती हे।
वे जो कल तक
भूख के जुलूस पर
दागते थे गोली
वे जो कल तक
अफसर और सेठ की आख के इशारे पर
फरजी जाल मे फाँसते थे पसीने को
और हँसते सपनो के कानो मे मौत का बैड वजा
उडेलते थे गम लोहा।
आज अपने हाथो को बाघकर आ गये ह
जनगगा मे घोने सडको पर
अधेरा-अधेरे से टकरा कर ही खोजता है
रोशनी का रास्ता।
२०/५/७६

बवडर

हवा ने उसके हाथ से झिटक कर
छीन लिये हैं हथियार
अंधेरे की तरह अकेलापन ही
उसके साथ परछाई वन टहलता है
अब वह पहले जितना खतरनाक नहीं है।

सपनों की सीढियो पर चढ तिरछी नजर से
जब भी आकश ताकता है
चाद सितारे दूर शून्य मे हँसते दीखते ह
रास्ते की रौदी धूल को
हथेलियों के बीच रगडने पर
अहसास होता है खुरदरी खरोंच का
यह क्या
किटकिटाने वाले दात तक
देने लगे जबाब !

यह वही है—
जिनके इशारे पर
कुर्सी की तरह घूमती थी धरती
रोशनी सपरिवार
रोज सुबह करती थी सलाम
हर शब्द को ऋचा की तरह
दाँयें-बायें रटते थे तोते
गुस्से से घबराकर फूटते थे ज्वालामुखी
लेकिन अब उसके साथ
नंगे सन्नाटे के अलावा और कोई नहीं है।

वह घायल साप की तरह
मिट्टी खाकर
फिर फन उठाना चाहता है
अपने ढहते महल मे
एक बार फिर
झाड-फानूस की चमक फैलाना चाहता है
घृणा से
उमडे समुद्र के
तीन आचमन कर
खडित होती अपनी मूरत को
फिर एक बार खडा करना चाहता है
लेकिन अब हवा उसके आस-पास
बवडर की तरह मडरा रही है।

२९/१०/७७

ऐसा कुछ भी नहीं

यह ठीक है कि समय ने
फिर एक बार हल्का सा उलट-पलट किया है
लेकिन कोई बहुत बडी बात हुई हो
ऐसा कुछ भी नहीं।
कुर्सियाँ उसी तरह जमीन से तीन फुट ऊँची
औकात रखती है
उसी तरह टेबुल के आर-पार ड्रावर से
चलता है लेन-देन
तिजोरी की तरह फूला धनसुख लाल का पेट
उसी तरह हो रहा है मोटा
उसी तरह ऊबट-खाबड नंगी सडको पर रिक्शा खींचता
रामेश्वर—हो रहा है दुबला।
हाँ इतना जरूर हुआ है कि
अब हम दाये-बाये घूमकर
अपनी बात अपने तरीके से बोल सकते है।

बदले मौसम मे कौओ के साथ वसत दूत भी
गाने लगे हैं—गीत
लेकिन चीजे
उसी तरह अपने फंदे मे कस रही है सबको
नये घुडसवारो के चाबुक
पसीना चूती पीठो पर
उसी तरह बजते है जोर से
जीवन सींचकर
सारी धरती को गुद गुदाने वालो को
उसी तरह मारती है पुलिस

उसी तरह सच को झूठ
झूठ को सच बनाने वाला
बाजा बजता है दिन-रात
हाँ इतना जरूर हुआ है कि
अब शराब की जगह लोग पीने लगे ह जीवन जल।

यह कोई सपना या जादुई खेल नही
बीते हुए कल का उत्पीडन था
जिससे खामोश नदियाँ तक उमड उठी थी
गुस्से से
चारो तरफ नाचने लगा था एक अघड
अपनी हिंसा को भूलकर बाघ-बकरी
एक ही स्वर मे पुकारने लगे थे—सबको
ऐसे ही समय मे
हथियार के रूप मे इस्तेमाल
हुई थी जनता—
जिसकी तेज चमक से घबराकर अधेरे का अहिरावण
धस गया पाताल मे
उजाला—एक और रास्ते की खोज मे
चक्कर लगाने लगा घर-घर
लेकिन हठात्
वही हथियार सस्ते साबुन की तरह
मजदूर बस्तियो मे सडते तालाबो के किनारे
मैले कपडे धोने के आने लगा काम।

एक अजीब सी घुटन और छटपटाहट के
सकरे रास्तो से
गुजर रहा है आदमी

उसके तेवर के डर मे अब अधेरा
आवाजो के मुँह पर लगा नही पायेगा-ताला
और न ही ठगबाज रोशनी का भ्रम
फैला सकेगा कोई जाल।
हा अब इतना जरूर हुआ है कि
अन्याय के खिलाफ लोगो को इकट्ठाकर
निकाल सकते है जुलूस
नारे लगाकर-कँपा सकते है आकाश
और तीसरे रास्ते पर खुल कर
कर सकते है बहस—

५/११/७७

राजा की सवारी

इसी राजमार्ग से गुजरेगी
राजा साहब की सवारी।
बस्ती के सब लोग
अपने घरों के चेहरों पर
सफेदी पुतवा लें
चोर की तरह
कहीं कोई काला दाग रह न जाये
दुबक कर बैठे न कोई कोने में
अंधेरे की तरह
चिथड़ों की आँखों से न ताके कोई राजा को
किसी भी चूल्हे से
धुएँदार कोयलों की आंच न उठे
और किसी बच्चे के पेट से
रोने की आवाज न निकले
चारों तरफ लहरायें केवल रेशम की ही झालरें
आज—इसी राजमार्ग से गुजरेगी
राजा साहब की सवारी।

कोतवाल नाक पर रूमाल रख
वर्दी की धूल झाड़
पिटवा रहा था ढिंढोरा
सारी बस्ती ही बनी थी नगाड़ा
पीछे कुछ सिपाही अपना डंडा नचाते
आँखें मटकाकर
कर रहे थे खुसर-पुसर
चौधरी जी आपको ही बनना है सरपंच

सारे रास्ते पर बिछवा दीजिये
फूलों के गलीचे
बड़े ही दयालु और पारखी हैं राजा साहब
भीतर की आंख से देखते हैं—सबका दर्द
ठीक से गुजर गई सवारी अगर इधर से
स्वर्ग बन जायेगी यह बस्ती
सबके घर सुख का समन्दर लहरायेगा
भूख क्या, भूख का बाप भाग जायेगा
सुनकर हँसा था—एक लड़का हा-हा कर

यह रोने की आवाज कहां से आ रही है
जल्दी से दबाकर गला
चुप करो चुप करो
सवारी के आने का समय हो गया है।
यह कौन राजद्रोही
हवा के पखे से
सुलगा रहा है अंगीठियां
पानी फेंको
पानी फेंको
सवारी के आने का समय हो गया है।
पहरेदार सायरनों की चीख
लड़के की हँसी से
टकराकर खड़खड़ा रही थी
कोतवाल जप रहा था
सवारी के आने का समय हो गया है
सवारी आ – ने – का – स – म – य है।

२७/११/७८

यह नदी

यह नदी कितनी अच्छी है
जब भी उफनती है
मेरे दरवाजे पर
नई तरोताजा
मिट्टी लाकर डाल देती है
और देखते ही देखते
अपने आप हँसने लगती है—फसलें
भर जाता है खाली गोदामों का
बड़ा मुँह—
पता नहीं, कहाँ पड़ता है अकाल
कैसे मरते हैं लोग भूख से ?
सच यह नदी कितनी अच्छी है
जिसने मेरी पुश्त दर पुश्त को
अभी तक बना रखा है—राजा !
नदी को उकसानेवाली हवा के खिलाफ
मैंने रखे हैं—मूछोंवाले लठैत
और खरीदी हैं बन्दूकें।
दो पाववाले नंगे पशुओं की तरह ही
यह नदी—सब समय
मेरी सेवा में लगी रहती है
लेकिन—इसके मौन में उमड़ते-गुस्से के भय से
कांपता रहता है मेरा मन।
यह नदी कितनी सीधी, सरल अबोध है
कि लहरों की तरह उठने वाले, इसके हाथों को
क्यों नहीं एक बार फिर गाली से भूँज दूँ।

२३/११/७७

निरकुश

छोटे से सवाल पर—दूध की तरह उफन कर
अपने हाथो पर उगा लेता हू फफोने
और फूँक मारता हूँ
कि सुलगती धरती बुझ जाये
बुझ जाये लोगो की पुतलियो मे
चमकते रोशनी के टुकडे
तनी मुट्ठियाँ हो जायें ढीली
मैं फिर एक बार निरकुश बादशाह बनना चाहता हूँ।
मेरी फूली जेब पर उठनेवाली उँगली की
टोपी उतार कर थूक देता हूँ आकाशवाणी से
और हँसकर हिलाता हूँ आकाश।
अधेरे मे छुरा भौंक कर
पोछ देता हूँ निशान
पसीने की पीठ पर
न्यायालय खरीद कर सेफडिपोजिट मे
रखने की एक वस्तु है।
मैने रुई की तरह धुनधुनकर
जनता को बना लिया है मुलायम
मेरी जड खोदनेवाले हाथो पर
ठोक दी हू कीलें
और बहुत गहरे रोपा है
कुर्सी के पावो को—सुनो मेरी मुलायम जनता
आने वाले समय मे
मैं एक बदजात-बदनाम ईश्वर की तरह
पूजा जाऊँगा—

११/२/७०

यह आकाश

अपनी पीठ को
टीव से सीधा भी [illegible]
न ही टखना को [illegible]
और यह आकाश
अपनी जल्दी ही [illegible]
कहा गये
गरज-[illegible] के [illegible]
बहुरंगी बादल
अपनी फुहारों से [illegible]
पीली धनक [illegible]
स्वयं मेरी [illegible] ?
क्या मना [illegible]
चाट गई सबको
और यह आकाश [illegible] ?
इसने क्यों ही [illegible]
चारों तरफ
सुबह के पहले ही [illegible]
मुस्सेवाली [illegible]
मुल्को की [illegible]
उठाव-पटक [illegible]
नया पाना [illegible]
फिर नहीं [illegible]
यह क्या
आकाश [illegible]

७/८/३५

फिर जन्म लूगा

इस जहरीली घास को
काटने मे अभी और समय लगेगा।
'चापला'—इन सपचियो और सरकडो मे
कुछ नही होगा
सबके साथ
खुरपी-कुदाल और फावडा लिये
तैयार रहो!
मुझे तो 'उनकी' बडी जात के सांप ने काट लिया है
और मेरे शरीर का जहर—पूरे कुनबे मे
फैलाना चाहते है
लेकिन—मैं मरकर भी
फिर यही कही जन्म लूंगा।
'चापला' देखो उस पीपल के नीचे
काशीनाथ बन्दूकवाले ठाकुर के साथ
थानेदार को हमारे ग्राम के घर दिखा रहा है।
आज रात वे यही अछूत यज्ञ करेंगे
पूरे कुनबे की आहुति देकर हाथ सेकेंगे
तुम यज्ञ के धुएँ मे भटक नही जाना
सबके साथ
खुरपी-कुदाल-फावडा लिये तैयार रहना
और घास उखाड उखाडकर जडो मे मट्ठा देना
मै इसी गर्भवती धरती पर
फिर जन्म लूँगा—'चापला'!

७/७/७८

शगल

उनके मेज की बत्ती कभी भी
नही बुझती
अपनी बडी चाबिया के गुच्छे मे
हर सुबह सूरज को
दराज मे बन्द कर लेते है।
दिन 'उनके' दफ्तर के बाहर स्टूल पर
चपरासी बना बैठा रहता है
धूप अगर अपनी आँखें दिखाने का
तनकर खडी होती है
चपरासी कॉलिंगबेल मे घबराकर
कापने लगता है।
भाग दौड भरी हडकम्प मे
दराज मे घुटता सूरज
रद्दी कागज की तरह मसलकर
बास्केट मे फेंक दिया जाता है
यह शगल उनके लिए
नया नही है।

१२/६/७६

रोशनी की सुरक्षा

आँखों में बची हुई रोशनी की
सुरक्षा के लिए ही
अपना नाम दर्ज करवाया था रजिस्टर में
सुना है—यंत्रों की सहायता से
पुतलियों की सुरंगों में सिकुड़कर बैठी
रोशनी को
तलाश लेते हो तुम।
फिर लोहे की अलमारी के डिब्बे में
क्यों कर रहे हो बंद
मेरी रोशनी का कार्ड ?
बार-बार डायलूट करने पर
धुएँ की तरह फैलते धुंध के पहाड़ों में भी
दिखाई देती है
किरण की तरह चमकती रोशनी।
डॉक्टर ! खूबसूरत ठंडे डार्क रूम में
सोने के फ्रेम वाले चश्मे से
असली दुनिया के चेहरे पर खुदे
जीवंत अक्षर पढ़ नहीं पाऊँगा
मैं तो चोरी होती रोशनी की सुरक्षा के लिए
आया था तुम्हारे पास।

१७/१/७९

अहसास

दु ख की गर्म हवा के झोंके
झपट्टा मारते हुए
जैसे ही छू कर गुजरे
बर्फ की तरह् जमा हुआ भीतर का दर्द
पिघल कर बहने लगा—
'उसे' पहली बार बांध-टूटने का
अहसास हुआ।
उफन उफन कर बहती तेज
नमकीन पानी की धारा को
वह रोक नही पाया
उसकी आवाज को
पानी मे लहराते साँपो ने
अपने फनो से रुद्ध कर दिया था।
वह चिन्तित हो गया
आस पास और स्वय इस बाढ म
कही डूब न जाये
लेकिन 'वह' लहरो मे हिचकोले खाता
अपने विश्वास के सहारे
फिर हँसते ससार मे पहुँच गया
जहाँ उसे नयी मिट्टी की महक ने
अपनी उँगलियो से सहलाया।

१२/११/७६

लोडसेडिंग

लोडसेडिंग की टेबुल पर
पाव फैलाकर
मोमबत्ती की तरह गलते जीवन को
फिर से देख रहा हूँ
गल-गल कर नया रूप लेती मोमबत्ती
मुझ मे पैदा करती है –नया विश्वास।
फिर भी—सफेद पेपरवेट की चमक
चुभती है आखो मे
सिर झुकाकर झूलते पखे का दौडना
रुक कर फैला रहा है—एक नई उमस
सामने वाली खिडकी खोलूँ भी कैसे ?
लोडसेडिंग पावो को जकडता जा रहा है।

यह लोडसेडिंग गावो को
लीलता आ रहा है युगो से
लेकिन आज तक रुका नही किसान का
सूरज के साथ उठकर खेत जाना
पसीना सीचकर अपनी फसल तैयार करना
धरती के गीत गा
दुख छोटा करना
और लीलते लोडसेडिंग से बार-बार लडना
आज तक रुका नही—
लोडसेडिंग मे ही पेपरवेट को
लट्टू की तरह घुमाने पर देखता हूँ
चारो तरफ डूब गया है सब कुछ पानी मे
बिना बादलो के ही जीवन का सब कुछ

बटोर ले जानेवाली यह बाढ
किस पाताल से आगई ?
बचाओ-बचाओ का हाहाकार
भागने लगा तूफान की तरह
और देखते ही देखते टेबुल के चारो तरफ
फन फला कर
खडे हो गये बडे-बडे सॉप
जिनके पेट से मासूम बच्चों का रूदन
पीली साडी पहने हँसती सरसो की महक
माटी खोदते किसानो की कुदाल तक दिखाई देती है
लोडसेडिग मगरमच्छ की तरह मुँह खोले
निगलना चाह रहा है सब कुछ !

नही-नही मैं भयभीत होकर
चुप नही बैठ सकता
मुझे अपने सकरे दायरो से निकलकर
आना होगा बाहर
तोडनी होगी एकरसता की दीवारें
सागर की तरह फैले अथाह जीवन को
समेटना होगा बाहो मे
गैंची लेकर और गहरे उतरना होगा
अधेरी सुरगो मे
लोडसेडिग की जडे काटने
कविता के लिए रचना होगा जीवन्त ससार
भीतर का सच शेर की तरह दहाड उठा ।

सापो की परछाई से
मोमबत्ती को बचाते हुए

पेपरवेट फेंक कर बन्द खिडकी खोलता हूँ
हवा के झोको के साथ—तैरता उजाला
लोडसेडिंग की पीठ पर चढ बैठता है
मुझे हल्की-सी राहत महसूस होती है।

टेबुल पर बिछे शीशे मे
बाहर का दृश्य देखता हूँ
मकानो की ऊँचाई का सिलसिला
उसी तरह जारी है
उसी तरह
छोटे घरो की छतें हो जाती हैं गायब
हर रोज जीने की लडाई का जुलूस घूमता है शहर मे
हर रोज एक नया निर्णय करते है लोग।

अचानक यह सारी हलचल
'लालडीगि' के ठहरे पानी मे कैसे उतर गई?
रिजव बैंक की परछाई अपने विस्तार से
ढँकना चाहती है उसे
लेकिन जी पी ओ मे छोडी अनाम चिट्ठिया
डी एल ओ जाते वक्त
विस्तार को ठेलकर करती है छोटा
टेलीफोन भवन का त्रास कन्वसन
फिर हलचल को निकाल देता है बाहर
लोडसेडिंग कुबडा बन घूमने लगता है।

यह कैसा शहर है
एक तरफ चीख चीत्कार का सिलसिला
और एक तरफ बज रहे है ढोल ढमाके

इतने बडे हादसे मे भी लोग
घूम रहे ह—नशे मे।

जरूर कहीं कोई गडबड है
फिर से ढूढनी होगी इतिहास की नब्ज
लेकिन इतिहास के खौफनाक जगल मे
घूसना भी सहज नहीं है अब
तब क्या मैं दरवाजे पर ही बैठ
किश्त शह मात चिल्लाता
बना रहूँ शतरज का खिलाडी ?

५/७/७८

वह केवल चिली का

लाशो के गुम्बद पर बैठे—
फौजी बादशाह के
बूटो की नोक तोड नही सकी
'माचू पिच्चू' की ऊँचाइया ।
'सात आगो' के हर घर की तलाश मे
तुम्हारी कविता के गुरिल्ला शब्द
सफेद भेडियो को खदेड रहे ह ।

कैंसर के कीडे रोक नही पाये
रगो मे दौडते रक्त को
फेफडो को चबानेवाले दात
नही थे उनके पास
बडी मशीनो की चीख—मौत ने
चील की तरह झपट लिया है
तुम्हारी धडकन को
लेकिन दुनिया जानती है कॉमरेड
तुम मार दिये गये हो ।

एक नाम जिसने बर्फ की तरह जमी हुई
मौत की खामोशी को तोडा
पेडो की हरी नोकदार पत्तियो पर हँसा—नेरूदा
जिसको छूकर थकी हवा भी बदलती रही करवट
अधेरी खदानो मे पत्थरो को तोडते
बाजुओ पर चमकते पसीने मे
चाद की तरह हँसते चेहरे को
कौन नही कहेगा अपना साथी ?

वह केवल चिली का कवि नहीं था ?
'उसके' कान सम्पूर्ण धरती की
सुनते थे धड़कन
'वह' अंधेरे में आकाश के तानाशाही चेहरे को
बार-बार करता था बेनकाब
उसकी कविता का संगीत
हर लड़ाकू इलाके में
गूंजेगा शहादत बन !

१६/१०/७३

लेनिन कौन है ?

मेरा एक पडोसी
पिछले कई दिनो से
एक ही सवाल पूछता है बार-बार
आखिर लेनिन कौन है ?
क्या वह धरती का सबसे बडा राजा है ?
या कि कोई पुण्यात्मा नया साहूकार
औलिया पगम्बर-पीर याकि मठाधीश पडित !
नाम जिसका लेते लोग—पागल दीवाने बन
क्या वह ईश्वर से भी बडा और निराला है !
पूछता है वह मुझसे
आखिर लेनिन कौन है ?

कैसे दूँ जवाब उसे
तिथियो के चौखटो मे
गणित के सवाल जैसे
कैसे समझा दूँ झट
बार-बार रोता मन—जैसे सच्चा सपना टूटा !
शताब्दी के सिर से उतर रहा यह दशक
लोहे की जजीरो मे कैदी बन सास लेती
धरती के कुछ हिस्सो मे हवा जैसे
धक्का देकर घुस गया था लेनिन
फिर भी वह पूछता है
आखिर लेनिन कौन है ?

जानता है बहुत कुछ लेनिन के बारे मे
जानबूझकर अनजान 'वह बनता है

बहुत कुछ बोलता है चालाकी से भरा हुआ
भ्रम का मसीहा बन
बेचता है रोशनी
पूछने पर बतलाता है—
चाबुकों की मार से नीली पीठ—वोल्गा की,
धूएँ का काजल दाढ़ी बन उग रहा
चेहरे पर—हर नगर बस्ती के
उदासी थी—
दु ख के समन्दर मे सास लेता रूस देश
ऐसे ही समय मे वहा जन्मा था लेनिन
बाधा सारी पृथ्वी को अपनी नन्ही बाहो मे
खाली हुए सिंहासन एक ही आवाज मे
भागे धमगुरू—अपना अफोमी धर्म ले
ईश्वर अपने ही घर मे बन गया अजनबी
जहा-जहा पहुँची लेनिन की पदचाप
फिर भी वह पूछता है
आखिर लेनिन कौन है ?

और फिर बतलाता है—
पूँजी के बडे पहाड पहन बिरजस सामती
रोक रहे पदचाप लेकिन चढ हवा के कधे
घूमती ग्राम नगर बस्ती आकाश मे ।
घूँसा जब बनती है—लाख-लाख ऊँगलिया मिल
बहुत बडी शक्ति बन खडे होते वही लेनिन ।
जीवन की जटिलताओ का
एक-एक रेशा काट
'एक कदम पीछे दो कदम आगे चल'
बाजुओ के परिश्रम को चूसते

जो स्याही चूस
काटकर उन्हे पथ दिखलाता है लेनिन ।

इतिहास के समन्दर का
मथनकर सबसे पहले
आदमी के भीतर छिपे सूर्य को निकाला
ग्लोब के सीने से मानवता की पीडा पोछ
सच का हँसता ससार रचा फिर से
फिर भी वह पूछना है
आखिर लेनिन कौन है ?

मैं तो अभी शिशु हूँ कविता जगत मे
मुझसे बडा ज्ञानी है मेरा वह पडोसी
मन्दिर-मकान कार कारबार हे अनेक
वैष्णवी चेहरा है—घूर्तों का बादशाह
भीतर ही भीतर यह भय सालता उसे
जान गये अनभिज्ञ लेनिन था आदमी
उसके दल बल के होश उड जायेंगे
इसलिये वह पूछना है
आखिर लेनिन कौन है ?

और कुछ नही केवल आदमी है लेनिन
सीखा नही धूल झाड
अजनबी बन अलग होना
साथ रहना-साथ चलना
साथ मरना साथ जीना
अपनी कमजोरियो को जानता था ठीक से
आदमी था, आदमी को पहचानता था ठीक से ।
१४/४/८०

लाला लाखन सिंह

जलती आग को जूते मे कुचलकर
प्रतिदिन तीन बार बुझाना
लाला लाखन सिंह का पक्का नियम है।
हर सुबह खिडकी के दरवाजो की फाक से
आच की तरह चमकती किरण
जैसे ही कमरे मे घुसती है
'वे शीशम की लकडी के डडे से
पीटते है उसे
और तब तक कुचलते रहते हैं
जब तक फर्श पर बिखर नही जाती।
सुलगते चूल्हे को देखते ही
लपक कर ठोकर मार छितरा देते हैं
और आच पकडे कोयलो को
राख बनने तक कुचलते रहते हैं
हर नियम को पूरा कर
हाथ धोते हैं गगाजल से।
ईश्वर उपासना की तरह—प्रतिदिन
नियम पूरा न होने पर उन्हे
रात को नीद नही आती
अपनी गिनती को पूरा करने
स्वप्न मे उठ कर
पडोस की बस्ती मे—ठण्ड से ठिठुरते
बीडी के कश को कम्बल की तरह लपेटते
लोगो के मुँह को कुचलकर ही
लेते हैं चैन
और फिर हाथ धोते ह गगाजल से।

यह सिलसिला
ठण्डी धरती की चेतना से लेकर
विकास की गगन स्पर्शी सीढी तक
चलता आ रहा है।
जलती आग को कुचलकर बुझाना ही
उनका इतिहास है।
अपनी घोगा मस्ती से
गर्भवती मिट्टी और खामोश जगल पर
कर रखा है कब्जा
'उनके' डर से अधेरी रात मे—जुगनू तक
उस इलाके से नही गुजरते
अमावस की रात ही प्रिय रात होती है
लाला लाखन सिंह की।
उपासना मे चिनगारियो की तरह
सुलगती अगरबत्तियो को
बुझाते वक्त भूकम्प के भय का धक्का
लगता है—
वे गो-भक्त बनकर
विराट मदिर बनवा देते है
और किसी दिन
कही भी आग न मिलने पर
अपने ही हाथो तीन बार जलाकर
कुचलते है जूते से
अपने नियमो को पालतू कुत्ते की तरह
पालते ह दिन-रात
लाला लाखन सिह।

१८/११/७९

अथक-नाच

बहुत दूर तक पूरे रास्ते को काट कर
लम्बी खाई खोदने वाले
फिर अपने चेहरो पर सफेदी पोत
आ रहे हैं—मच पर नया नाटक करने।
आदमी के विश्वास को
इस तरह छलनी बनाया है
कि अब इनका हर शब्द
साँप से भी अधिक जहरीला लगता है।
वर्षों से अभ्यस्त हमारी आँखें
हर नाटक-नायक को तटस्थ भाव से
देखने को तैयार रहती है
कितना जल्दी भूल जाता है हमारा शिशु मन
अपनी ही पीठ पर रिसते गहरे घावो का दद।
मच के इद-गिर्द गोल पगडीवाले पहरेदार
अपनी डकार से
दौडती मशीन पर लगा देते है ताला
नायक मच पर पगडी के पेचो की मोच
सवारता है बार-बार
चूल्हा और थाली के बीच/अथक नाच करता पेट सुनता है
घु घरुओ की रुनझुन मे भूख का हाहाकार
अभाव के तबले की थाप का चीत्कार
पसीने से लथपथ हाँफती सितार की घुटन
और इसी घुटन मे देखता है असरय पेट
अकाल खायी धरती पर नाचते हैं एक साथ
ताडव नृत्य—
८/६/७९

ठण्डी राख मे दबी

पीली धूप का टुकडे-टुकडे होकर
चारो तरफ बिखरना
और फिर
एक बदनाम मगलामुखी शाम का
अपने दागदार चेहरे पर
(मटमैला) उजाला पोतकर
आगन मे उतरना—एक जैसा ही है।
इसी धुधलके मे 'रचना'
ठडी राख मे दबी चिनगारियो का बटोरती है
'मजु' उन्हे चुन-चुन कर
सितारो की तरह सजा देती है आकाश मे
और खेलने लगती है गुडियो का खेल—
अन्धेरे मे
सन्नाटे का सॉयरन सुनकर
गर्म तवे की तरह लाल चाद
सरक कर आ जाता है सामने
उसे देखकर कहती है—
इसी पर सकेगे भविष्य की रोटी
जिस दिशा से सुनाई देगी
खाली कनस्तरो की भूखी चीख
उसी तरफ परोसेंगे
और यही खेल खेलते रहेगे
भोर होने तक — —।

१८/३/८०

मेरी धरती से—

अन्धेरे में जन्मे अक्षर की तरह
अपने होने का सबूत
हर बार
हर मोड़—मोर्चे पर, देता हुआ
जैसे ही आगे बढ़ता हूँ
लम्पट मौसम—
अपने मानसूनी चाबुक से
पीटने लगता है बेतहाशा।
युगों-युगों से मार खाकर
भीगता हुआ मेरा विश्वास
चट्टान की तरह बन गया है
कठोर।

अपने रास्ते का रोड़ा समझ
मुझे फेंक दिया गया है
तूफानी समुद्र में
जहां मुलायम मिट्टी
रंग-बिरंगी हँसती मछलियां
नीले शीशे में, झांक-झांक कर
मुँह देखता आकाश
जाल में सूरज बांध लौटता मछुआ
और मुट्ठियां बांधे
घूमती लहरें मिलीं।

तेज धार में
प्रवासीपन के दुःख को धोते हुए

ज्वार-भाटे मे,
बुदबुदो के होठो गाता हूँ
मेरी धरती से सुदर
और कोई धरती नही है ।

१८/७/८०

मुट्ठी भर ताकत

इतनी तेज गति से चलने वाली
इस देश की गाडी
अचानक अपने ही हाथो रचित
भयावह जगल के बीच
फँसे रुक गई ?
खाली इ जिन अपनी सु सु से
जगल की खामोशी तोडने की कर रहा है चेष्टा
यात्री जब भी खिडकियो के शीशे उठाते ह्
आस पास मँहगाई की छडी लिए
टहलता अँधेरा
घुसने को लपकता है
झडी हिलाते हिलाते जनगाड के हाथ
थक गये हैं
चुप्पी तोडती—'खोखन' फेरीवाले की आवाज
मुट्ठी भर ताकत—मुट्ठी भर विश्वास।
अगला स्टेशन आने मे
कितना समय और लगेगा ?
आप कहा तक जायेंगे ??
क्या देश की गाडी चल रही है ???
प्रथम श्रेणी की कुर्सियाँ
आपस मे टकराकर मचा रही है हँगामा
द्वितीय श्रेणी—दोहरी मार से
त्रिशकु बन ताक रही है
तृतीय श्रेणी मे—बिजली पानी गुल है
और पूरे डिब्बे मे
बच्चो के रोने की चीख

शेप न होने वाली यात्रा का दुख
थोडी रोटियो को चबाते अनेक मुँह
माचिस पर रगड खाती तिलियो की खुसरपुसर
सिग्नल पर खडी लालबत्ती की टिमटिमाहट
और फिर 'खोखन' फेरीवाले की आवाज
मुट्ठी भर ताकत—मुट्ठी भर विश्वास
आखिर कोई तो होगा इसका चालक ?
लेबिल क्रासिंग पर आपस मे भिडी गाडियो से कटे
हाथ पाव पेट-चेहरो की चीख
मँडरा रही है हवा मे
जगली भेडियो के गुर्राने की आवाज
पेडो पर चढकर बोल रही है
पास के पोखर मे डिब्बे की परछाई पर
दहाड रहा है राजा
फिर खोखन' फेरीवाले की आवाज
मुट्ठीभर ताकत—मुट्ठीभर विश्वास
अपने अपने बिस्तरो के बेटट
फिर से कस रहे ह सब
क्या स्टेशन आने ही वाला है ?

२९/१०/८०



- जन्म मन १९३४ बीकानेर (राजस्थान)
- शिक्षा एम ए (हिन्दी)
  कलकत्ता विश्वविद्यालय
- सम्प्रति अध्यापन
- रचनायें १ समय से पहले (कविता सग्रह)
  - राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत १९७७ ७८ के लिए
  - उत्तर प्रदेश हिन्दी सस्थान द्वारा पुरस्कृत १९७७ ७८ के लिए

  २ आदमी और आदमी (कहानी सग्रह)
  ३ राजा की सवारी (कविता सग्रह)
  ४ क मान कबूतर
  (कहानी सग्रह यत्रस्थ)
- सम्पादन वातायन सामयिक महानगर ७७
  आधुनिक साहित्य सदर्भ